उषा बालासाहेब स्वामी व अन्य

बनाम

किरण अप्पासो स्वामी व अन्य।

अप्रैल 18,2007

[तरूण चटर्जी और आर. वी. रवींद्रन, जे. जे.]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 : आदेश 6 नियम 17 अभिवचनों का संशोधन-लिखित कथन-ध्यान में रखे जाने वाले सिद्धांत-लिखित कथन का संशोधन और वाद का संशोधन-अनुमति का शासी अनुदान करने वाले कारक -मुक़दमे की संपत्तियाँ मूल रूप से एक 'वी'की थीं और उनकी मृत्यु पर 'ए' और 'बी 'मुक़दमे की संपत्तियों के उत्तराधिकारी बने- वादी और प्रतिवादी क्रमशः 'ए' और 'बी' के विधिक प्रतिनिधि थे-वादीगण को प्रतिवादीगण के साथ संयुक्त रूप से मुकदमे की संपत्तियों का आधा हिस्सा विरासत में मिला था-चूंकि प्रतिवादीगण ने संपत्तियों को विभाजित करने और अलग कब्जा देने से इनकार कर दिया था, इसलिए वादीगण ने संपत्तियों के विभाजन और कब्जे के लिए मुकदमा दायर किया। प्रतिवादियों ने अपना लिखित बयान दायर किया जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि वादीगण अपने लिखित बयान के हकदार थे जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि वादीगण मुकदमे की संपत्तियों में आधे हिस्से के हकदार थे-इसके बाद, प्रतिवादी गण ने आदेश 6 नियम 17 के तहत लिखित बयान में संशोधन

के लिए एक आवेदन दायर किया जिसमें उन्होंने यह जोड़ना चाहा कि वादीगण संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों में अधिकार, स्वामित्व और हित प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वे मृतक 'ए'के अवैध बच्चे थे-विचारणीय अदालत ने संशोधन का आवेदन स्वीकार कर लिया-लेकिन उच्च न्यायालय ने कहा कि प्रतिवादीगण के लिए लिखित बयान में संशोधन के माध्यम से अपनी स्वीकारोक्ति को वापस लेने की अनुमति नहीं थी क्योंकि यह मामले को पूरी तरह से विस्थापित करके वादी को अप्राप्य पूर्वाग्रह कारित करने के बराबर होगा। अभिनिर्धारित वाद के संशोधन के लिए आवेदन और लिखित कथन के संशोधन के लिए आवेदन अलग-अलग आधारों पर होते हैं-लिखित कथन के संशोधन के मामले में, अदालतें वाद की तुलना में संशोधन की अनुमति देने में अधिक उदार होगा क्योंकि पूर्वाग्रह का प्रश्न बाद के मामले की तुलना में पूर्व में बहुत कम होगा। इसलिए, बचाव का एक नया आधार जोड़ना या बचाव को प्रतिस्थापित करना या बदलना या लिखित बयान में असंगत याचिकाएं लेना अनुमेय होगा-इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा लिखित कथन में संशोधन के आवेदन को अस्वीकार करना उचित नहीं है।

उषा बाला साहेब स्वामी बनाम किरण अप्पासो स्वामी वाद की संपत्तियां मूल रूप से एक 'वी'की थीं और उनकी मृत्यु पर 'ए'और 'बी'वाद की संपत्तियों के उत्तराधिकारी के रूप में आए। अपीलार्थी जो वाद में प्रतिवादी संख्या 8 से 14 तक थे, वे 'बी'के उत्तराधिकारी और विधिक

प्रतिनिधि थे। 'ए'की मृत्यु के उपरांत वादीगण को व प्रतिवादी संख्या 1 से 7 को मुकदमे की संपत्तियों का संयुक्त रूप से आधा हिस्सा विरासत में मिला। चूंकि अपीलकर्ताओं ने मुकदमे की संपत्तियों और कब्जे को विभाजित करने से इनकार कर दिया था। याचिकाकर्ताओं ने अपनी याचिका दायर कर लिखित बयान में स्वीकार किया कि वादी व प्रतिवादी संख्या 1 से 7 वादग्रस्त संपत्तियों में आधे हिस्से के हकदार थे।

इसके बाद, अपीलकर्ताओं ने संशोधन के लिए एक आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6 नियम 17 के तहत दायर किया जिसमें लिखित बयान में उन्होंने यह जोड़ना चाहा कि वादी और प्रतिवादी संख्या 3 से 7 संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों में अधिकार, स्वामित्व और हित प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वे मृतक 'ए'के अवैध बच्चे थे। विचारणीय अदालत ने संशोधन के लिए आवेदन को मंजूरी दे दी।

उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिका को स्वीकार कर लिया। यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलकर्ताओं के लिए लिखित कथन के संशोधन द्वारा स्वीकारोक्ति को वापस लेने की अनुमति नहीं थी क्योंकि यह वादी के मामले को पूरी तरह से विस्थापित करने के बराबर होगा जिससे उसके प्रति अपरिवर्तनीय पूर्वाग्रह पैदा होगा। इसलिए याचिका दायर की गई है।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया 1. सिविल संहिता प्रक्रिया 1908 के आदेश 6 नियम 17 के केवल अवलोकन से यह स्पष्ट है कि न्यायालय को प्रकरण के किसी भी स्तर पर अभिवचनों में परिवर्तन और संशोधन की अनुमति देने की शक्ति प्रदत्त है। यदि न्यायालय का यह विचार है कि इस तरह के संशोधन पक्षकारों के बीच विवाद का वास्तविक प्रश्न निर्धारित करने के लिए आवश्यक हैं। तथापि, संहिता के आदेश 6 नियम 17 के परंतुक में यह प्रावधान है कि मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति तब तक नहीं दी जाएगी जब तक न्यायालय यह निष्कर्ष नहीं निकालता कि यथोचित परिश्रम के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था। हालाँकि, संहिता के आदेश 6 नियम 17 का प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा, क्योंकि मुकदमे की सुनवाई अभी शुरू नहीं हुई है। [पैरा 18] [314-डी-ई]

2. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि अदालतों को अभिवचनों में संशोधन की मंजूरी देने में इस आधार पर उदार होना चाहिए कि दूसरी तरफ के पक्षकार को गंभीर अन्याय या अपूरणीय हानि नहीं हो रही हो या संशोधन के लिए आवेदन प्रामाणिक नहीं हो।

[पैरा 19] [314-एफ] 308

माश्चेम्या बनाम मौंग मो हनौंग, ए. आई. आर. (1922) पी. सी. 249

3.1. यह एक समान रूप से स्थापित सिद्धांत है कि वाद के संशोधन के लिए आवेदन और लिखित कथन के संशोधन के लिए आवेदन अलग-अलग आधारों पर होते हैं। सामान्य सिद्धांत कि अभिवचनों में संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक वह कार्रवाई के भौतिक या वैकल्पिक कारण में परिवर्तन कर रहें हों या दावे की प्रकृति वाद के संशोधनों पर लागू हो। लिखित कथन के संशोधन से संबंधित सिद्धांतों में इसका कोई समकक्ष नहीं है। इसलिए, लिखित कथनों में रक्षा का एक नया आधार जोड़ना या एक रक्षा को प्रतिस्थापित करना या बदलना या याचिका का असंगत आधार लेना आपत्तिजनक नहीं होगा, जबकि वाद में कार्रवाई के नए कारण को जोड़ना, बदलना या प्रतिस्थापित करना आपत्तिजनक हो सकता है। [पैरा 20] [325-बी-सी]

3.2. ऐसा अभिनिर्धारित कानून होने के कारण, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि लिखित कथन के संशोधन के मामले में, अदालतें वाद की तुलना में संशोधन की अनुमति देने में अधिक उदार होगी क्योंकि पूर्वाग्रह का प्रश्न बाद के मामले की तुलना में पूर्व में बहुत कम होगा। [पैरा 21] [315-डी]

बी. के. नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई, [2001] 1 एस. सी. सी. 712, बालेव सिंह बनाम मनोहर सिंह, [2006] 6 एस. सी. सी. 498

और बसावा जग्गू धोबी बनाम सुखनंदन रामदास चौधरी (मृत), [1995] सप। 3 एस. सी. सी.179, लागू किये गये।

मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लाधा राम, [1976] 4 एससीसी 320 और हीरा लाल बनाम कल्याण मल, [1998] 1 एस. सी. सी. 278, लागू नहीं थे।

........लिखित कथन के संशोधन की अनुमति देने में उदार दृष्टिकोण, एक स्वाभाविक दृष्टिकोण है जब संशोधन की अनुमति देने की स्थिति में दूसरे पक्ष को धन में मुआवजा दिया जा सकता है। तकनीकी रूप से कानून को न्यायालयों में पक्षकारों के बीच न्याय करने में बाधा डालने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

[पैरा 22] [316-बी]

एल. जे. लीच एंड कंपनी लिमिटेड वी. जार्डिन स्किनर एंड कंपनी, आकाशवाणी [1957] एससी 357, लागू किया।

5. लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन करके अपीलार्थियों द्वारा स्वीकारोक्ति वापस लेने का मामला नहीं था बल्कि स्वीकारोक्ति को बरकरार रखा गया था और केवल एक परंतुक जोड़ा गया था। यह कानूनी रूप से जायज है और इसलिए की गई स्वीकारोक्ति को वापस लेने का सवाल बिल्कुल भी उत्पन्न नहीं हो सकता है।

[पैरा 26] [317-जी; 318-ए]

6.1. उच्च न्यायालय इस बात की सराहना करने में विफल रहा कि प्रस्तावित संशोधन के माध्यम से अपीलार्थी पैतृक संपत्ति में आधा हिस्सा होने की स्वीकारोक्ति वापस नहीं ले रहे थे बल्कि उन्होंने केवल यह जोड़ा कि वादी और प्रतिवादी संख्या 3 से 8 तक आधे हिस्से के हकदार तब हो सकते हैं यदि वे साबित करते हैं कि वे 'ए' (मृतक) की वैध संतान हैं, जो कि मृतक 'वी की संपत्ति में हकदार था। प्रस्तुत अभिलेख से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी द्वारा जो लिखित कथन पेश किए गए, वह प्रतिवादी संख्या 1('ए'की पहली पत्नी)की मृत्यु से पूर्व पेश किया गया था। प्रतिवादी संख्या 1 की मृत्यु के बाद जब वादी और प्रतिवादी संख्या 2 से 8 ने खुद को प्रतिवादी संख्या 1 का उत्तराधिकारी और विधिक प्रतिनिधि होने का दावा किया तब अपीलार्थी ने वादी और प्रतिवादी संख्या 2 से 8 की वैधता को चुनौती देने के लिए लिखित कथन में संशोधन का आवेदन प्रस्तुत किया। अपीलार्थियों ने जिस प्रकार लिखित कथन में संशोधन की मांग की, वह संशोधन की मांग कानून में अनुज्ञेय नहीं थी। [पैरा 27] [318-बी-डी]

6.2. इसलिए, यह न तो लिखित बयान में स्वीकारोक्ति वापस लेने का मामला था और न ही अपीलार्थी द्वारा लिखित कथन में किए गए स्वीकृति को रद्द करने का मामला था। इस तरह अपीलार्थी ने संशोधन के माध्यम से अपनी स्वीकारोक्ति को अक्षुण्ण रखा और केवल कुछ अतिरिक्त

तथ्य जोड़े। तदनुसार, अपीलार्थी वादी और प्रतिवादी संख्या 3 से 7 की वैधता के संबंध में केवल एक मुद्दा उठा रहे हैं कि वे वादग्रस्त संपत्तियों में मृतक 'ए'के उत्तराधिकारी और विधिक प्रतिनिधि हैं। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया जाना आवश्यक है कि उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश को पलटना और लिखत कथम में संशोधन के लिए आवेदन को अस्वीकार करना उचित नहीं है। [पैरा 28] [318-एफ-जी]

7. वर्तमान मामले में, संशोधन वादी के मामले को विस्थापित नहीं करेगा, क्योंकि यह केवल अदालत को यह तय करने में मदद करेगा कि क्या उत्तरदाता अपनी वैधता के प्रमाण पर संपत्ति में उक्त हिस्से में पात्र हैं, जो वादी या प्रतिवादी संख्या 2 से 8 को अपरिवर्तनीय पूर्वाग्रह पैदा नहीं करेगा। [पैरा 29] [320-ए-बी]

अक्षय रेस्तरां बनाम पी. अंजनाप्पा, [1995] सप। 2 एस. सी. सी. 303, लागू किया गया।

बसावा जग्गू धोबी बनाम सुखनंदन रामदास चौधरी (मृत), [1995] सप. 3 एस. सी. सी. 179, लागू नहीं किया गया।

सिविल अपीलीय न्यायाधिकारः सिविल अपील 2007 की सं. 2019।

माननीय उच्च न्यायालय, बॉम्बे की रिट याचिका संख्या 2390/2005 में दिनांक 03.10.2005 के निर्णय और आदेश से वी. एन. गणपुले, पूनम कुमारी, एस. बी. मेइतेई और नरेश कुमार गौर- याचिकाकर्ता की ओर से।

यू. यू. ललित, एस. ए. देसाई, ए. एस. देसाई, विक्रम सलूजा, ए. एन. सूर्यवंशी, वेंकटेश्वर राव अनुमोलु, वी. बी. जोशी, प्रमित सक्सेना, प्रशांत चिटमिया और यश पाल ढींगरा- उत्तरदाताओं की ओर से। न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया। तारून चटर्जी, जे. 1. याचिका स्वीकार की गई।

2. यह अपील उच्च न्यायालय, बॉम्बे द्वारा 3 अक्टूबर 2005 की रिट याचिका संख्या 2390/2005 में पारित उस आदेश के विरुद्ध पेश की गयी है, जिसके तहत सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ खंड, कोल्हापुर के विशेष दीवानी मुकदमा संख्या 503/1996 में पारित आदेश को निरस्त किया गया।

3. वादी, जो वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी संख्या 1 है, (इसके बाद "वादी"कहा जा रहा है) ने वाद की संपत्तियों का विभाजन और अलग कब्जे के लिए एक मुकदमा दायर किया है जैसा कि वाद के पैरा 1 में पूरी तरह से वर्णित है। आरोपों को संक्षेप में इस प्रकार बताया गया हैः

4. वाद की संपत्तियां मूल रूप से एक वीरसंगय्या(मृतक) की थीं । उसकी मृत्यु पर, अप्पासाओ (मृतक½और बालासाओ (मृतक) वादग्रस्त संपत्तियों के उत्तराधिकारी के रूप में आए। अपीलार्थी जो, वाद में प्रतिवादी 8 से 14 हैं, वे बालासाव (मृत होने के बाद से) के उत्तराधिकारी और विधिक प्रतिनिधि हैं। वादी को संयुक्त रूप से प्रतिवादी संख्या 1 से 7 के

साथ विवादग्रस्त संपत्ति का आधा हिस्सा अप्पासाओ की मृत्यु पर विरासत में मिला। जब अपीलार्थियों ने वाद की संपत्तियों को विभाजित करने और अलग से देने से इनकार कर दिया था तब वादी ने विभाजन और कब्जे के लिए मुकदमा दायर किया।

5. प्रतिवादी संख्या 1 से 7 जो इस अपील में उत्तरदाता संख्या 2 से 8 हैं, ने वादी के मामले का समर्थन करने के लिए मुकदमे में पेश हुए और अपना लिखित बयान दायर किया। वाद में उपस्थिति दर्ज करने के बाद, अपीलार्थियों ने 28 फरवरी, 2003 को अपना लिखित बयान दायर किया जिसमें उन्होंने यह स्वीकार किया कि वादी के साथ प्रतिवादी संख्या 1 से 7 वाद की संपत्तियों में एक आधे हिस्से के हकदार थे।

6. प्रारंभ में, अपीलार्थियों द्वारा 18 जून, 2003 को लिखित कथन में संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे वादी ने विवादित किया। उक्त आवेदन को सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ खंड, कोल्हापुर द्वारा अनुमति दी गई थी लेकिन बाद में वादी के कहने पर उच्च न्यायालय के समक्ष दायर एक रिट आवेदन पर, संशोधन की अनुमति देने वाले आदेश को रद्द कर दिया गया था और संशोधन के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया था। हालांकि, अपीलार्थियों को लिखित कथन संशोधन के लिए एक नया आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्रता दी गई थी।

7. ऐसी स्वतंत्रता के अनुसरण में, अपीलार्थियों द्वारा लिखित कथन के संशोधन के लिए एक नया आवेदन 12 मार्च, 2004 को दायर किया गया था, जिसका भी वादी द्वारा विरोध किया गया था।

8. लिखित कथन के संशोधन के आवेदन के माध्यम से अपीलकर्ताओं ने यह जोड़ना चाहा था कि वादी और प्रतिवादी संख्या 2 से 7 संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों में अधिकार, स्वामित्व और हित प्राप्त नहीं कर सकते थे क्योंकि वे मृतक अप्पासाओ की अवैध संतानें थीं। संशोधन के लिए आवेदन में, अपीलकर्ताओं ने यह आरोप लगाने की मांग की कि अप्पासाओ (मृतक) ने शुरू में प्रतिवादी नं. 1 से शादी की थी। चूंकि उसे कोई संतान नहीं थी, इसलिए उक्त अप्पासाओ ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 लागू होने के बाद प्रतिवादी संख्या 2 को अपनी दूसरी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। अपीलार्थियों ने आरोप लगाया कि अप्पासाओ और प्रतिवादी संख्या 2 की शादी शुरू से ही शून्य थी, जिस कारण न तो प्रतिवादी संख्या 2 और न ही वादी और प्रतिवादी सं 3 से 7 मुकदमे की संपत्तियों में किसी भी हिस्से का दावा करने के हकदार थे।

9. वादी ने एक लिखित आपत्ति दायर करके लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन का विरोध किया जिसमें वादी ने मुख्य रूप से मांग की थी कि लिखित कथन के संशोधन को इस आधार पर अस्वीकार किया जाए कि अपीलकर्ताओं ने अपने लिखित कथन में यह स्वीकार

किया था कि वादी और प्रतिवादी संख्या 1 से 7 संयुक्त रूप से मुकदमे की संपत्तियों के आधे हिस्से का अधिकार थे जिस कारण लिखित कथन में संशोधन करके उन्हें इस तरह की स्वीकृति को वापस लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। उषा बालासाहेब स्वामी बनाम किरण अप्पासो स्वामी [तरण चटर्जी, जे.]

10. विद्वान सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ खंड, कोल्हापुर ने लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति दी और वादी द्वारा मामले के पुनरीक्षण के लिए एक रिट याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गयी। उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश द्वारा निचली अदालत के आदेश को दरकिनार कर दिया था और लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि चूंकि अपीलकर्ताओं ने अपने लिखित बयान में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि प्रतिवादी मुकदमे की संपत्तियों में आधे हिस्से के हकदार थे, इसलिए उनके लिए लिखित बयान में संशोधन करके इस तरह की स्वीकारोक्ति को वापस लेने की अनुमति नहीं थी क्योंकि यह वादी के मामले को पूरी तरह से विस्थापित करने के बराबर होगा जिससे उसके प्रति अपरिवर्तनीय पूर्वाग्रह पैदा होगा।

11. इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, उच्च न्यायालय ने एक मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लाधाराम एंड कम्पनी

[1976] 4 एस. सी. सी. 320 के मामले के निर्णय को आधार बनाया। उच्च न्यायालय के अनुसार, मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड (ऊपर) के मामले में यह निर्णय था कि जब एक बार लिखित कथन में वादी के पक्ष में कोइ स्वीकारोक्ति आ चुकी है, तब संशोधन के माध्यम से प्रतिवादीगण द्वारा उस स्वीकारोक्ति को वापस नहीं लिया जा सकता और यदि इस तरह से किया जाता है तो यह वादी के मामले को पूरी तरह से विस्थापित करना होगा जिससे अपरिवर्तनीय पूर्वाग्रह पैदा होता है। इसी तरह हीरालाल बनाम कल्याण मल और अन्य [1998] 1 एस. सी. सी. 278 के मामले के फैसले पर भरोसा करते हुए उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो वादी के मामले और विभाजन डिक्री प्राप्त करने के लिए उसके अधिकार को विस्थापित करेगा। इसलिए, संशोधन कानून में अस्वीकार्य था।

12. उच्च न्यायालय के इस आदेश से असंतुष्ट होकर यह विशेष अनुमति याचिका दायर की गई है जिसके संबंध में अनुमति पहले ही दी जा चुकी है।

13. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान वरिष्ठ वकील श्री वी. एन. गणपुले ने पहली बार में, यह तर्क दिया कि लिखित बयान में की गई स्वीकृति को वापस लेने का सवाल नहीं उठ सकता है क्योंकि संशोधन के बाद भी अपीलकर्ताओं ने पैरा 8 में की गई "स्वीकृति"को बरकरार रखा है,

लेकिन केवल कुछ अतिरिक्त तथ्य जोड़े हैं जिन्हें वादी और प्रतिवादी सं 1 से 7 को वाद संपत्तियों अपने-अपने शेयर प्राप्त करने के लिए, जिनको लिखित बयान में अपीलार्थियों द्वारा कथित रूप से स्वीकार किया गया है, साबित करने की आवश्यकता है। दूसरा, यह तर्क दिया गया कि यह मान भी लिया जाए कि इस तरह के संशोधन द्वारा, अपीलकर्ताओं ने लिखित बयान के पैरा 8 में उनके द्वारा की गई स्वीकारोक्ति को वापस लेने की मांग की थी, तब भी उच्च न्यायालय ने लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन को अस्वीकार करने में घोर त्रुटि की, क्योंकि संशोधन के माध्यम से अपीलकर्ताओं ने केवल इस तरह के स्वीकारोक्ति की व्याख्या करने की मांग की थी या किसी भी मामले में, संशोधन केवल एक असंगत याचिका उठाने के बराबर होगा जो लिखित कथन के संशोधन के मामले में कानून में अनुज्ञेय है। इस तर्क के समर्थन में, श्री गणपुले ने बलदेव सिंह और अन्य बनाम वी. मनोहर सिंह, [2006] 6 एस. सी. सी. 498 के मामले पर भरोसा जताया था।। श्री गणपुले द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने भी इस न्यायालय के मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) मामले के फैसले पर भरोसा करने में गलती की क्योंकि उक्त निर्णय वास्तव में अपीलार्थियों के मामले को सुदृढ़ करता है और उसका समर्थन करता है। अंत में यह तर्क दिया गया कि चूंकि निचली अदालत ने अपने विवेकाधिकार में संशोधन करने की अनुमति दी है,

इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 227 के तहत अपने पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए निचली अदालत के विवेकाधीन आदेश को उलटना उचित नहीं था। उषा बालासाहेब स्वामी बनाम किरण अप्पासो स्वामी [TARUN Chatterjee, J.]

14. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री उदय ललित द्वारा उपरोक्त दलीलों को चुनौती दी गई थी। श्री ललित ने यह तर्क दिया कि अपीलकर्ताओं द्वारा अपने लिखित बयान में वादी के अधिकारों के संबंध में दी गयी स्वीकृति को इस तरह के संशोधन की अनुमति से वापस नहीं लिया जा सकता क्योंकि इससे वादी को अपरिवर्तनीय पूर्वाग्रह पैदा होगा। इस तर्क के समर्थन में मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले पर भरोसा किया, जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा संशोधन का आवेदन अस्वीकार करते हुए भरोसा किया गया था। उन्होंने जोर देकर कहा कि अगर संशोधन की अनुमति दी जाती है तो लिखित बयान के पैरा 8 में दी गयी स्वीकृति खत्म हो जाएगी क्योंकि लिखित बयान के मात्र अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अपीलकर्ताओं ने मुकदमे की संपत्तियों में वादी और प्रतिवादी संख्या 1 से 7 के आधे हिस्से को स्वीकार किया है। श्री ललित ने यह भी तर्क दिया कि बलदेव सिंह के मामले (उपरोक्त) के जिस निर्णय पर अपीलार्थियों के विद्वान वकील द्वारा उनके तर्क के समर्थन में भरोसा किया गया था, वह इस

मामले के तथ्यों में लागू नहीं होगा। इसलिए श्री ललित ने तर्क दिया कि लिखित बयान में पूरी तरह से अलग और असंगत तथ्य पेश करने वाले संशोधन की अनुमित नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह लिखित बयान के पैरा 8 में दी गयी स्वीकृति को विस्थापित कर देगा और वादी को पहले से ही अर्जित एक मूल्यवान अधिकार से वंचित कर देगा।

15. हीरा लाल (उपरोक्त) के मामले में फैसले पर भरोसा करते हुए, जैसा कि उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश में भरोसा किया था, श्री ललित ने तर्क दिया कि लिखित कथन के पैरा 8 में की गई स्वीकृति को लिखित कथन के संशोधन से रद्द नहीं किया जा सकता है। तदनुसार, श्री ललित ने हमें यह अभिनिर्धारित करने के लिए आमंत्रित किया कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी के लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन को अस्वीकार करने में पूरी तरह से उचित था।

16. पक्षों के विद्वान वकील की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ सुनने और लिखित बयान के साथ-साथ लिखित बयान के संशोधन और उच्च न्यायालय और ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेशों पर विस्तार से विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि उच्च कोर्ट ने लिखित बयान में संशोधन की अर्जी खारिज कर गलती कर दी।

17. इस सवाल पर विचार करने से पहले कि क्या मांगे गए संशोधन को उच्च न्यायालय द्वारा सही ढंग से खारिज कर दिया गया था या नहीं, हम उन सिद्धांत पर विचार कर सकते हैं - जिनके तहत अभिवचनों के संशोधनों की अनुमति दी जा सकती है या अस्वीकार किया जा सकता है। दलीलों में संशोधन की अनुमति देने या अस्वीकार करने का सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 से उत्पन्न हुआ है,जो निम्नानुसार होता है:

> "अदालत कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्ष को अपनी दलीलों को ऐसे तरीके से और ऐसे मानदंडों पर बदलने या संशोधित करने की अनुमति दे सकती है जो उचित होऔर ऐसे सभी संशोधन किए जाएंगे जो पक्षकारों के बीच विवाद के वास्तविक प्रश्नों को निर्धारित करने के उद्देश्य से आवश्यक हो सकते हैं।
>
> बशर्ते कि सुनवाई शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि उचित परिश्रम के बावजूद, पार्टी सुनवाई शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकती थी।"

(रेखांकित करना हमारा है)

18. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अदालत को कार्यवाही के किसी भी चरण में, दलीलों में परिवर्तन और संशोधन की अनुमति देने की शक्ति प्रदान की गई है, यदि उसका विचार है कि ऐसे संशोधन पक्षकारों के बीच विवाद का वास्तविक प्रश्न का पता लगाने के लिए आवश्यक हो सकता है। हालांकि, संहिता के आदेश 6 नियम 17 यह प्रावधान करता है कि मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्षकार इस मामले को विचारण शुरू होने से पहले नहीं उठा सकती थी। हालाँकि, संहिता के आदेश 6 नियम 17 का प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा, क्योंकि मुकदमे की सुनवाई अभी तक शुरू नहीं हुई है।

19. इस न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों से अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि अदालतों को दलीलों में संशोधन के लिए प्रार्थना स्वीकार करने में उदार होना चाहिए जब तक कि दूसरे पक्ष को गंभीर अन्याय या अपूरणीय क्षति न हो या इस आधार पर कि संशोधन की प्रार्थना प्रामाणिक नहीं थी। इस संबंध में, मा श्वे म्या बनाम माउंग मो ह्नौंग, एआईआर (1922) पी.सी. 249 के मामले में प्रिवी काउंसिल का अवलोकनपर ध्यान दिया जा सकता है। प्रिवी काउंसिल ने कहाः

"न्यायालयों के सभी नियम न्याय के उचित प्रशासन को सुरक्षित करने के प्रावधानों के अलावा और कुछ नहीं हैं और इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया जाए और उसके अधीन रखा जाए, ताकि संशोधन की पूर्ण शक्तियों का आनंद लिया जा सके और हमेशा रहना चाहिए। उदारतापूर्वक प्रयोग किया गया, लेकिन फिर भी कार्रवाई के एक विशिष्ट कारण को दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापित करने या संशोधन के माध्यम से मुकदमे की विषय-वस्तु को बदलने में सक्षम बनाने के लिए अभी तक कोई शक्ति नहीं दी गई है।" (रेखांकित करना हमारा है)

20. यह समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि वादी में संशोधन के लिए प्रार्थना और लिखित बयान में संशोधन के लिए प्रार्थना अलग-अलग आधार पर होती है। सामान्य सिद्धांत यह है कि अभिवचनों में संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है जब कार्रवाई के कारण या दावे की प्रकृति को भौतिक रूप से बदला जा सके या प्रतिस्थापित किया जा सके, वादपत्र में संशोधन पर लागू होता है। लिखित कथन के संशोधन से संबंधित सिद्धांतों में इसका कोई समकक्ष नहीं है। इसलिए, बचाव का कोई नया आधार जोड़ना या बचाव का प्रतिस्थापन या परिवर्तन करना या

लिखित बयान में असंगत दलीलें देना आपत्तिजनक नहीं होगा, जबकि वाद में कार्रवाई का नया कारण जोड़ना, बदलना या प्रतिस्थापित करना आपत्तिजनक हो सकता है।

21. इस तरह स्थापित कानून होने के कारण, हमें यह मानना चाहिए कि एक लिखित बयान के संशोधन के मामले में, अदालतें एक वादी की तुलना में संशोधन की अनुमति देने में अधिक उदार हैं क्योंकि पूर्व में पूर्वाग्रह का प्रश्न बाद की तुलना में बहुत कम होगा। [देखें बी.के. नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई, [2000] एल एससीसी 712 और बलदेव सिंह और अन्य बनाम मनोहर सिंह, [2006] 6 एससीसी 498]। यहां तक कि मोदी स्पिनिंग (सुप्रा) में वादी द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया गया वह स्पष्ट रूप से मानता है कि असंगत दलीलों को दलीलों में लिया जा सकता है। इस संदर्भ में, हम बसावन जग्गू धोबी बनाम सुखनंदन रामदास चौधरी (मृत), [1995] सप 3 एससीसी 179 में इस न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख कर सकते हैं। उस मामले में, प्रतिवादी ने शुरू में यह रुख अपनाया कि वह अन्य लोगों के साथ एक संयुक्त किरायेदार था। इसके बाद, उन्होंने प्रस्तुत किया कि वह मौद्रिक प्रतिफल के लिए लाइसेंसधारी थे, जिन्हें बॉम्बे रेंट, होटल और लॉजिंग हाउस रेट्स कंट्रोल एक्ट, 1947 की धारा आईएसए के प्रावधानों के अनुसार किरायेदार माना जाता था। इस न्यायालय ने माना कि प्रतिवादी वैध रूप से ऐसा असंगत बचाव ले सकता

था। लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देते हुए, इस न्यायालय ने बसावन जग्गू धोबी के मामले (सुप्रा) में निम्नानुसार देखाः

> "जहां तक पहले तर्क का संबंध है, हमें डर है कि निचली अदालतों ने यह निर्णय लेने में गलती की है कि मूल रूप से लिखित बयान में बताए गए रुख के विपरीत रुख अपनाकर प्रतिवादी आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के तहत अपने बयान में संशोधन करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। यह स्थापित कानून के विपरीत है जो प्रतिवादी को विपरीत रुख या विरोधाभासी रुख अपनाने के लिए खुला है, कार्रवाई का कारण किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होता है। यह केवल वादपत्र में संशोधन के मामले पर लागू होगा ताकि कार्रवाई का एक नया कारण प्रस्तुत किया जा सके।"

22. जैसा कि हम यहां पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने में उदार दृष्टिकोण एक सामान्य दृष्टिकोण है, जब यह संभव है कि संशोधन की अनुमति देने की स्थिति में दूसरे पक्ष को धन के रूप में मुआवजा दिया जा सकता है। पक्षकारों के बीच न्याय के प्रशासन में न्यायालयों को बाधा पहुंचाने के लिए कानून की तकनीक का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। एल.जे. लीच एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जार्डिन स्किनर एंड कंपनी, एआईआर (1957) एससी 357

के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि "लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने में अदालतें अधिक उदार हैं क्योंकि ऐसा करने से पूर्वाग्रह के प्रश्न की संभावनाकम है।उस मामले में इस न्यायालय ने यह भी माना कि

> "प्रतिवादी को बचाव में वैकल्पिक याचिका लेने का अधिकार है, हालांकि, यह एक अपवाद के अधीन है कि प्रस्तावित संशोधन द्वारा दूसरे पक्ष को गंभीर अन्याय का शिकार नहीं होना चाहिए।"

23. इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, एक लिखित बयान के संशोधन के मामले में अदालतें एक वादी की तुलना में अनुमति देने में अधिक उदार होंगी क्योंकि पूर्वाग्रह का प्रश्न बाद की तुलना में पूर्व में अधिक होगा और इसके अलावाबचाव का एक नया आधार या बचाव का प्रतिस्थापन या बदलाव या लिखित बयान में असंगत दलीलों को टालने की भी अनुमति दी जा सकती है, अब हम इस पर विचार करने के लिए आगे बढ़ सकते हैं कि क्या लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन को खारिज करना उच्च न्यायालय के लिए उचित था।

24. जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, श्री ललित ने यह तर्क देने के लिए हीरा लाल (सुप्रा) के मामले पर मजबूत भरोसा जताया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलकर्ताओं द्वारा मूल लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति को बिल्कुल भी खारिज नहीं किया जा सकता

है। हमारे विचार में, हमारे सामने मामले की तथ्यात्मक स्थिति और उस निर्णय में शामिल तथ्य अलग-अलग हैं। हीरा लाल के मामले में (सुप्रा) एक निश्चित रुख यह था कि वादी की दस अनुसूचित संपत्तियों में से सात में हिस्सेदारी थी क्योंकि वे वादी और प्रतिवादी 1और 2 की संयुक्त पारिवारिक संपत्तियों के रूप में थीं। हालाँकि, प्रतिवादियों ने लिखित बयान में संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे ट्रायल कोर्ट ने अनुमति नहीं दी। संशोधन की इस प्रकृति से निपटते समय, उस निर्णय में, इस न्यायालय ने पाया कि उच्च न्यायालय की ओर से यह मानना गलत था कि असंगत रुख अपनाने से, उत्तरदाता अपीलकर्ता के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे। न्यायालय ने कहा:

> "हमारे विचार में, सीपीसी की धारा 115 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की पहली स्वीकारोक्ति को उनके मूल लिखित बयान की अनुसूची-ए की संपत्तियों को 7 में से 5 वस्तुओं के बारे में वापस लेने की अनुमति देता है जिसको बरकरार नहीं रखा जा सकता है। इसका कारण स्पष्ट है। जहां तक अनुसूची-ए संपत्तियों का संबंध है, प्रतिवादी संख्या 1व 2 द्वारा सन 1993 एक स्पष्ट स्वीकारोक्ति अपने लिखित बयान में दी गई थी कि 10में से 7 संपत्तियां संयुक्त पारिवारिक संपत्तियां थीं

जिनमें वादी के पास 1/3 हिस्सा था और उनके पास 2/3 अविभाजित हिस्सा था। एक बार ऐसा रुख अपनाने के बाद, स्वाभाविक रूप से यह माना जाना चाहिए कि वाद की अनुसूची-ए संपत्तियाें की 7 वस्तुओं के संबंध में पार्टियों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी। इसलिए, विद्वान ट्रायल जज ने केवल शेष तीन वस्तुओं के संबंध में तनकी संख्या 2 बनाया जाना पूरी तरह से उचित ठहराया, जिसके लिए पार्टियों के बीच विवाद था। ऐसी स्थिति में सीपीसी के आदेश XV नियम 1 के तहत वादी का अदालत से इन 7 संपत्तियों के लिए तुरंत प्रारंभिक डिक्री पारित करने का अनुरोध करना उचित होगा। उक्त प्रावधान यह बताता है कि, 'जहां किसी मुकदमे की पहली सुनवाई में यह प्रतीत होता है कि पक्ष कानून या तथ्य के किसी भी प्रश्न पर विवाद में नहीं हैं, अदालत तुरंत फैसला सुना सकती है।'इसके अलावा, जब तक वादी ने संपत्तियों की स्वीकृत वस्तुओं के संबंध में प्राप्तकर्ता की नियुक्ति के लिए आवेदन नहीं दिया, तब तक प्रतिवादी ने इस तरह की स्वीकृति से बाहर निकलने के लिए कोई भी संशोधन आवेदन दायर करना उचित नहीं समझा। इसके बाद ही संशोधन के लिए आवेदन दिया गया।

विद्वान ट्रायल जज सही थे जब उन्होंने देखा कि आवेदन में दिए गए आधार भी उचित नहीं थे। नतीजतन, असंगत रुख अपनाने का कोई सवाल ही नहीं है, जिससे वादी पर पूर्व न्यायिक प्रभाव नहीं पड़ता, जैसा कि उच्च न्यायालय ने गलत तरीके से माना है।"

उषा बालासाहेब स्वामी बनाम। किरण अप्पासो स्वामी [तरण चटर्जी, जे.]

25. उपरोक्त टिप्पणियों और हीरा लाल के मामले (सुप्रा) में शामिल तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि उस मामले में निर्णय से उत्तरदाताओं को कोई मदद नहीं मिल सकती है।

26. लिखित बयान में संशोधन के संबंध में वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, हम पाते हैं कि अपीलकर्ताओं ने अपने मूल लिखित बयान के पैरा 8 में कहा था कि "वादी और प्रतिवादी संख्या 1 से 7 तक को 1/2 हिस्सा मिला है और प्रतिवादी संख्या 8 से 14 को परिवार की सभी संपत्तियों में 1/2 हिस्सा मिला है और मामियों को भी हिस्सा मिला है। लिखित बयान में पैरा 8 ए और 8 बी को शामिल करने और पैरा 8 के प्रतिस्थापन की मांग करके, अपीलकर्ताओं ने लिखित बयान के पैरा 8 में उनके द्वारा की गई स्वीकारोक्ति को बनाए रखा है, लेकिन प्रवेश में एक प्रावधान या शर्त जोड़ दी है। इसलिए, यह लिखित कथन में संशोधन के

लिए आवेदन करके अपीलकर्ताओं द्वारा स्वीकृति वापस लेने का मामला नहीं था, बल्कि वास्तव में इस तरह की स्वीकृति को बरकरार रखा गया था और केवल एक परंतुक जोड़ा गया है। हमारे विचार में, यह कानून में स्वीकार्य है और पैरा 8 में की गई स्वीकारोक्ति को ऊपर बताए गए तथ्यों के आधार पर वापस लेने का सवाल ही नहीं उठता है।

27. चूंकि हम पहले ही यह मान चुके हैं कि लिखित बयान में संशोधन के मामले में, प्रतिवादी नए बचाव के साथ-साथ असंगत रुख अपनाने का भी हकदार है और ऊपर की गई हमारी चर्चाओं के मद्देनजर, इसमें संशोधन के लिए आवेदन किया जा सकता है। लिखित बयान, अपीलकर्ताओं द्वारा स्वीकारोक्ति बिल्कुल भी वापस नहीं ली गई थी और न ही लिखित बयान में संशोधन के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा अपने आवेदन में पूरी तरह से असंगत दलील दी गई थी, उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा था कि प्रस्तावित संशोधन द्वारा, अपीलकर्ता पैतृक संपत्ति में आधे हिस्से के संबंध में उनकी स्वीकृति वापस नहीं ले रहे थे बल्कि उन्होंने केवल यह जोड़ा कि वादी और प्रतिवादी नं. 3 से 8 ऐसे हिस्से के हकदार हो सकते हैं यदि वे अप्पासाओ (मृतक) के वैध बच्चे साबित होते हैं जो स्वर्गीय वीरसंगय्या की संपत्ति में आधे हिस्से के हकदार थे। इसके अलावा, रिकॉर्ड से यह प्रतीत होता है कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर लिखित बयान प्रतिवादी संख्या 1 (अप्पासाओ की पहली पत्नी) की मृत्यु से पहले

दायर किया गया था। प्रतिवादी संख्या 1 की मृत्यु के बादजब वादी और प्रतिवादी नं. 2 से 8 ने खुद को प्रतिवादी संख्या 1के उत्तराधिकारी और विधिक प्रतिनिधि के रूप में दावा किया, तब अपीलकर्ताओं ने वादी और प्रतिवादी संख्या 2 से 8 की वैधता को चुनौती देते हुए लिखित बयान में संशोधन की मांग की।यहां ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, हमें नहीं लगता है कि अपीलकर्ताओं के लिए लिखित बयान में उस तरीके से संशोधन की मांग करना कानून में अस्वीकार्य था, जिस तरह से इसकी मांग की गई थी।

28. इसलिए, यह न तो लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति को वापस लेने का मामला था और न ही अपीलकर्ता द्वारा लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति को रद्द करने का मामला था। जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, इस तरह के संशोधन द्वारा अपीलकर्ता ने स्वीकारोक्ति को बरकरार रखा था और केवल कुछ अतिरिक्त तथ्य जोड़े थे जिन्हें वादी और प्रतिवादी संख्या 2 से 8 द्वारा साबित करने की आवश्यकता है ताकि मुकदमे की संपत्तियों में हिस्सेदारी प्राप्त की जा सके जैसा कि अपीलकर्ताओं ने अपने लिखित बयान में स्वीकार किया है। तदनुसार, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता केवल वादी और प्रतिवादी संख्या 3 से 7 की वैधता के संबंध में मुद्दा उठा रहे हैं कि वे मृतक अप्पासाओ के उत्तराधिकारियों और विधिक प्रतिनिधियों के रूप में मुकदमे की संपत्तियों को प्राप्त करने के

अधिकारी हैं या नहीं। इसलिए, उपरोक्त विवेचन के मद्देनजरयह माना जाना चाहिए कि, उच्च न्यायालय द्वारा ट्रायल कोर्ट के आदेश को पलटना और लिखित बयान में संशोधन के आवेदन को खारिज करना उचित नहीं था।

29. जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, श्री ललित ने उच्च न्यायालय द्वारा किए गए लिखित बयान में संशोधन के आवेदन को अस्वीकार करने के लिए मोदी स्पिनिंग (सुप्रा) के मामले पर मजबूत निर्भरता रखी थी। उस मामले में, वादी द्वारा प्रतिवादियों के खिलाफ 1,30,000 रुपये की डिक्री का दावा करने के लिए मुकदमा दायर किया गया था। प्रतिवादियों ने अपने लिखित बयान में स्वीकार किया कि 7 अप्रैल, 1967 के एक समझौते के आधार पर वादी ने उनके स्टॉकिस्ट-सह-वितरक के रूप में काम किया। तीन साल के बाद प्रतिवादियों ने संहिता के आदेश 6, नियम 17 के तहत आवेदन करके अनुच्छेद 25 से 26 को एक नए अनुच्छेद के साथ प्रतिस्थापित करके लिखित बयान में संशोधन की मांग की जिसमें उन्होंने नई दलील दी कि वादी एक व्यापारिक एजेंट सह क्रेता था, जिसका अर्थ है कि उन्होंने अपनी पहले की स्वीकारोक्ति से आगे जाने की कोशिश की कि वादी एक स्टॉकिस्ट सह-वितरक था। हमारी राय में, वर्तमान मामले को मोदी स्पिनिंग मामले से अलग किया जा सकता है। उस मामले में, वादी द्वारा संशोधन के लिए जो दलीलें की जा रही थीं, वे न केवल असंगत थीं, बल्कि इसके परिणामस्वरूप वादी पर गंभीर और

अपूरणीय पूर्वाग्रह पैदा हो रहा था और उसे पूरी तरह से विस्थापित कर दिया गया था। इस निर्णय के अनुच्छेद 10 में इस न्यायालय ने इस बात की भी सराहना की कि अभिवचनों में असंगत दलीलें दी जा सकती हैं लेकिन उस निर्णय में अनुच्छेद 25 और 26 के प्रतिस्थापन का प्रभाव असंगत और वैकल्पिक दलीलें नहीं दे रहा था बल्कि प्रतिवादियों द्वारा लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति वादी को पूरी तरह से विस्थापित करने की कोशिश कर रही थी। उस निर्णय के तथ्यों में इस न्यायालय ने आगे कहा कि यदि ऐसे संशोधनों की अनुमति दी गई, तो वादी को प्रतिवादियों से स्वीकृति प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर दिया जाएगा। इसके अलावा उस फैसले में उच्च न्यायालय ने लिखित बयान में संशोधन के आवेदन को भी खारिज कर दिया और ट्रायल कोर्ट से सहमत हो गया। मोदी स्पिनिंग के मामले में यह निर्णय लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति देने के मार्ग में नहीं आएगा क्योंकि लिखित बयान में, विशेष रूप से लिखित बयान के पैराग्राफ 8 में, प्रतिवादियों द्वारा स्वीकारोक्ति काे वापस लेने का बिल्कुल भी सवाल नहीं था केवल संशोधन के बाद अप्पासो की मृत्यु पर अपनी वैधता साबित करने के लिए वादी और प्रतिवादियों को 1 से 7 तक आमंत्रित करने के लिए कुछ पैराग्राफ जोड़े गए। ऐसी स्थिति में, हमें नहीं लगता कि मोदी स्पिनिंग मामला लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति देने के मार्ग में

रूकावट बनेगा। यह सच है कि बसावन जग्गू धोबी के मामले में इस न्यायालय ने, उस मामले के तथ्यों के आधार पर यहमाना कि किसी भी पक्ष के लिए स्वीकारोक्ति से पीछे हटना संभव नहीं होगा, क्योंकि स्वीकारोक्ति किसी के पक्ष में एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो उस स्वीकारोक्ति का लाभ उठाने का हकदार होगा। वर्तमान मामले में, लिखित बयान के पैरा 8 में की गई स्वीकारोक्ति को बिल्कुल भी वापस नहीं लिया गया, बल्कि स्वीकारोक्ति को बरकरार रखते हुए केवल एक राइडर और/या परंतुक जोड़ा गया है। उस निर्णय में भी इस न्यायालय ने इस सिद्धांत की सराहना की है कि स्वीकारोक्ति को भी समझाया जा सकता है और असंगत दलीलों को दलीलों में लिया जा सकता है और इस प्रकार लिखित बयान में संशोधन की अनुमति दी जा सकती है। हमारी राय में, जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले में, संशोधन वादी के मामले को विस्थापित नहीं करेगा, क्योंकि इससे अदालत को केवल यह तय करने में मदद मिलेगी कि उत्तरदाता अपने सबूत के आधार पर संपत्ति में विधिक रूप से उक्त हिस्से के लिए पात्र हैं या नहीं और इससे वादी या प्रतिवादी संख्या 2 से 8 को कोई अपूरणीय पूर्वाग्रह नहीं होगा।तदनुसार, हमें नहीं लगता कि बसावन जग्गू धाबी मामले के तथ्यों को इसमें लागू किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूप से अलग है।

30. फिर से अक्षय रेस्तरां बनाम पी. अंजनप्पा, [1995] अनुपूरक 2 एससीसी 303 के मामले में इस न्यायालय ने माना कि अभिवचनों में स्वीकारोक्ति को भी समझाया जा सकता है और लिखित बयान में एक निश्चित रुख अपनाने के बाद भी असंगत दलीलों को संशोधन याचिका में लिया जा सकता है। हालाँकि, उस निर्णय में लिखित बयान के संशोधन को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उत्तरदाताओं ने पार्टियों के पारस्परिक लाभ के लिए भूमि के विकास के लिए एक समझौता किया था और इस प्रकार ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रतिवादी को यह स्पष्ट नहीं कर सकता कि क्या समझौता बिक्री के लिए था या पारस्परिक लाभ के लिए था क्योंकि इस संबंध में समझौता मौन था। उस निर्णय में इस न्यायालय ने आगे कहा कि उच्च न्यायालय ने दिवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने में कोई महत्वपूर्ण अनियमितता नहीं की। इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या स्वीकारोक्ति वापस ली जा सकती है या नहीं, निम्नानुसार देखा गया:

> "यह स्थापित कानून है कि स्वीकारोक्ति को भी समझाया जा सकता है और यहां तक कि असंगत दलीलों को भी याचिकाओं में लिया जा सकता है। यह देखा गया है कि लिखित बयान के पैराग्राफ 6 में निश्चित रुख अपनाया गया

था लेकिन बाद में संशोधन के लिए आवेदन में यह मांग की गई कि याचिका में बताए अनुसार संशोधित किया जाए। मामले को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने में धारा 115 सी.पी.सी. के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय द्वारा कोई महत्वपूर्ण अनियमितता नहीं की गई है।"

(रेखांकित करना हमारा है)

31. उपरोक्त कारणों से, हम लिखित बयान में संशोधन के आवेदन को इस आधार पर खारिज करने के उच्च न्यायालय के फैसले को कायम रखने में असमर्थ हैं कि यदि इस तरह के संशोधन की अनुमति दी गई तो इससे वादी पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। मामले का एक और पहलू भी है।ट्रायल कोर्ट ने लिखित बयान के साथ-साथ लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन पर विचार करने के बाद अपने विवेक से लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति दी थी। उच्च न्यायालय को लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन को खारिज करते हुए ट्रायल कोर्ट के उक्त आदेश को उलटना नहीं चाहिए था, जब ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर सामग्री और कानून के सिद्धांतों पर विचार करते हुए लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने में अपने विवेक का प्रयोग किया है।

32. उपरोक्त कारणों से, अपील की अनुमति दी जाती है और लिखित बयान में संशोधन की प्रार्थना को खारिज करने के उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया जाता है। इस प्रकार लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन स्वीकार किया जाता है। ट्रायल कोर्ट को निर्देश दिया जाता है कि अब किसी भी पक्ष को कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना, इस आदेश के संचार की तारीख से छह महीने के भीतर जल्द से जल्द मुकदमे का निपटारा करे।

लागत के रूप में कोई आदेश नहीं है।

अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती मिनाक्षी अमित चौधरी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित कि या गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं कि या जासकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा ।

***